International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

आदिवासी समाज की सामाजिक, आर्थिक ,धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Gore Lal Meena

Associate Professor Hindi
Govt. PG College Karauli, Rajasthan , India

प्रस्तावना

आज का दौर वैश्वीकरण का है। आज हर व्यक्ति अपने सपनों को साकार करना चाहता है। वैश्वीकरण के प्रतिरोध में आदिवासी साहित्य की अनुगूंज को भी समझने और जानने की दरकार है। जिसके लिए सबसे पहले हमें आदिवासी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को बचाना होगा।

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजक है।

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक नोम चॉमस्की का मानना है कि 'वैश्वीकरण' का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण है। इस एकीकरण में भाषा की अहम् भूमिका होगी और जो भाषा व्यापक रूप में प्रयोग में रहेगी, उसी का स्थान विश्व में सुनिश्चित होगा।'

इसमें कोई शक नहीं कि वैश्वीकरण ने शहरी जीवन स्तर में सुधार किया और उसे ऊँचा उठाया है, लेकिन हाल फिलहाल में भूमण्डलीकरण के विरोध में आवाज उठाई जा रही है जो समाज के ऐसे वर्ग से आती है जो तथाकथित जंगली हैं, असभ्य हैं, बर्बर हैं और मूल समाज का हिस्सा नहीं हैं। इनकी आवाज में ऐसी समस्या की पीड़ा है जिसने समाज के शिक्षितों को इनकी आवाज में आवाज मिलने को विवश किया है। सवाल उठता है कि ऐसी क्या वजह है जिसने इस समाज को भूमण्डलीकरण के विरोध में खड़ा किया है जिस वैश्वीकरण से सम्पूर्ण विश्व का लाभ हो रहा है, तरक्की हो रही है, उसके जीवन स्तर में सुधार हो रहा है, आदिवासी समाज उसका विरोध क्यों कर रहा है।

भगवान ग्वाहड़े की पुस्तक ''आदिवासी मोर्चा'' में कविता ''वैश्वीकरण की असली शक्ल'' शीर्षक से ज्ञात हो जाता है कि आदिवासी समाज के लिए वैश्वीकरण की छवि नकारात्मक है।

आदिवासी प्रकृति से जुड़े हुए हैं, उनकी आत्मा, उनके पूर्वज पेड़ों में बसते हैं, उनका जीवन, उनकी सम्पूर्ण दिनचर्या प्रकृति के आस–पास उसके साथ है, लेकिन वैश्वीकरण के कारण उनके इलाके के पहाड़ टूट रहे हैं, झरने नालों में परिवर्तित हो रहे हैं।

भगवान ग्वाहड़े लिखते हैं –

''पेड़–पौधे–लता–बेलियों को कुचल कर
तुमने बनाई महामार्ग की
द्रुतगतिमान अमानवीय राहें
जैसे फैलाई हों
दैत्य दानव ने अपनी विकराल बाहें.....''1

ग्लोबल वार्मिंग वर्तमान समय में एक ऐसा ज्वलन्त विषय है जिसकी चर्चा विश्व भर में की तो जा रही है किन्तु कोई ठोस रास्ता नहीं निकल पा रहा है। इसकी एकमात्र वजह है प्रकृति का अन्धाधुंध दोहन! कोई भी अपनी सुविधाओं से समझौता करने के लिए तैयार नहीं है, किन्तु आदिवासी तटस्थ रूप से केवल पर्यावरण के विषय में ही सोचता है।

मुख्य शब्द : आदिवासी ,महिला संस्कृति ,वैश्वीकरण , विकास

आदिवासी समाज की सामाजिक, आर्थिक ,धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

वैश्वीकरण के प्रतिरोध में आदिवासी साहित्य की अनुगूंज को भी समझने और जानने की दरकार है। आदिवासी साहित्य जीवन और जीवन के यथार्थ का साहित्य है कल्पना आधारित नहीं। इसलिए जीवन की शैली, मिथक, समस्यायें, पीड़ा व शोषण ही उसकी साहित्य की वस्तु है। किसी भी भाषा के द्वारा हम
उसके मानव का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन चित्रित कर सकते हैं। आदिवासियों की संस्कृति समृद्ध है, लेकिन साहित्य में अपनी सम्पूर्णता के साथ उसका दर्ज होना अभी शेष है। शायद उसका एक बड़ा कारण शिक्षा का माध्यम, भाषा और भाषा से सम्बन्धित साहित्य और संस्कृति भी है।
आदिवासियों ने जिस भाषा में शिक्षा प्राप्त किया, उसी भाषा के माध्यम से जीवन की विभिन्न आवश्यकताएँ पूरी करने की कोशिश की। अनायास ही अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति से जुड़ाव छूटता गया, किन्तु अब वैश्वीकरण के समय अपनी भाषा और संस्कृति से जुड़ना अति आवश्यक हो गया है।
किसी भी भाषा का साहित्य उस भाषा के बोलने वालों की मनोवृत्ति, भावना, चिंतन और जीवन सम्बन्धी दर्शन को लेकर चलता है, इसीलिए एक भाषा अपने कलेवर में उस भावभूमि को संजोये रहती है जो उसकी बोलने वालों की मनोवृत्ति तथा चिंतन को लिए होती है। वाकई! इस रूप में साहित्य उस भाषा के बोलने वाले व्यक्तियों के जीवन की सांसे हुआ करती हैं। वह उस भाषा–भाषी समूह के भूत, भविष्य और वर्तमान का सांस्कृतिक इतिहास भी होता है। इसीलिए किसी भी साहित्य की सर्वोत्तम परख में उस भाषा के बोलने वालों की संस्कृति की प्रगाढ़ता, मौलिकता तथा दार्शनिक पद्धति सन्निहित होती है। इसीलिए साहित्य को समाज का त्रिकालदर्शी दर्पण कहा गया है, क्योंकि किसी भी समाज के जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब साहित्य के दृष्टिगत होता है।

आदिवासियों की अपनी संस्कृति है, जो गैर आदिवासियों से कई मायनों में विशिष्ट है। क्या यह सही नहीं है कि हिन्दू धर्म आज भी वर्ण व्यवस्था के भार से मुक्त नहीं हो पाया है, जबकि आदिवासी समाज में वर्ण व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं है। स्त्री–पुरूष के रिश्ते की दृष्टि से आदिवासी समाज आदर्श समाज है।
बहुसंख्यक आदिवासियों के पास नगर जीवन, सुरूचिपूर्ण भोजन और अच्छे कपड़े, जो सभ्य होने का मानदण्ड माना जाता है – का अभाव है, पर उनके पास
उच्चतर जीवन मूल्य हैं, लोभ और लालच से मुक्त 'जीवन की संस्कृति' है। वर्तमान में आर्थिक वैश्वीकरण और उदारीकरण ने सबसे अधिक सांस्कृतिक पटल पर परिवर्तन उपस्थित किए हैं, जिससे आदिवासी संस्कृति अछूती नहीं रह पायी है।
आज के वैश्वीकरण के समय में कारपोरेट जगत का बोलबाला है। 'साम्प्रदायिकता, जातिवाद,राजनीति की क्रूरता, मीडिया का बाजारीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद इत्यादि वैश्वीकरण के दौर की सच्चाई है।' जिससे कि आदिवासी समाज को अनगिनत चुनौतियों से जूझना पड़ रहा है।
''नई आर्थिक नीतियों से हमारी सरकारों और उद्योगपतियों को विकास के नाम पर आदिवासियों को लूटने की खुली छूट मिल गई। इसका असर देश के किसी भी आदिवासी इलाके में देखा जा सकता है। देश भर के आदिवासियों ने इस खुली छूट को अलग–अलग तरीकों से चुनौती भी दी है। लाल रेखा की परिधि के बढ़ते चले जाने को लेकर नियमगिरि की ग्राम सभाओं द्वारा वेदांत के एक सफर में विरोध तक में हम इसे देख सकते हैं। आदिवासियों की समस्यायें सुलझने के बजाय उलझती जा रही है।''2
इसलिए ऐसी स्थिति में आदिवासी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वस्तुतः आदिवासी समाज से संवाद स्थापित करने में आदिवासी साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासी समाज के सामने अपने अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है। उन्हें जल, जंगल, जमीन से काटने का प्रयास किया जा रहा है, पर इस संकट से निजात आदिवासी साहित्य ही दिला सकता है। आदिवासी साहित्य को आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों ने लिखा है।
गोपीनाथ माहंती का 'अमृत संतान', 'परजा', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घटरानी', विनोद कुमार का 'समर शेष हैं', श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ
बाँस फूलते हैं', राकेश कुमार सिंह का 'जो इतिहास में नहीं है', पुन्नी सिंह का 'सहराना', हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर', महाश्वेता देवी का 'जंगल के दावेदार', रवेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' व 'गायब होता देश', महुआ माँसी का 'नरंग घोड़ा, नीलकंठ दुजा' आदि आदिवासियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य है। इनमें गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासी जीवन पर किए गए लेखन में केवल लेखनीय संवेदनशीलता ही झलकती है, जबकि आदिवासी लेखकों द्वारा यह लेखन अधिक प्रभावी ढंग से हुआ है। यह स्वानुभूति तथा सहानुभूति का अन्तर है।

कभी इस देश के बड़े भाषाविद् सुनीति कुमार चटर्जी ने यह भविष्यवाणी की थी कि आदिवासी भाषाएं अपनी मौत मरती जाएंगी और दो–तीन सौ साल में खत्म हो जायेंगी। कहना न होगा कि इसका सामना आदिवासी साहित्य एवं विमर्श को करना है कि इस वैश्वीकरण के समय में आदिवासी अपनी भाषा के बिना अपनी संस्कृति को कैसे बचायेंगे।
''आदिवासी साहित्य सम्बन्धी अधिकांश भमों के निर्माण की शुरूआत यहीं से होती है, कि आखिर हम आदिवासी साहित्य में किसे शामिल मानेंगे और किसे नहीं। पहली बात तो यह कि हिन्दी आदिवासियों की मातृभाषा नहीं रही है, इसलिए हमें इस आग्रह को छोड़ना होगा कि हिन्दी में लिखे साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानेंगे, आदिवासी भाषाओं में लिखे साहित्य को आदिवासी साहित्य नहीं मानेंगे। आदिवासी साहित्य की परम्परा में हमें विभिन्न आदिवासी भाषाओं में बिखरे लाखों आदिवासी गीतों के रूप में उपलब्ध 'पुरखौती' को शामिल करना होगा, जिसका कुछ हिस्सा डब्लू0आर0सी0 आर्चर जैसे विद्वानों द्वारा संकलित भी किया गया है। यह आदिवासी साहित्य का मूलाधार है। प्रवृत्तियाँ बताते वक्त हमें 'संताली', 'मुंड़ारी', 'खड़िया', 'कुडुख', 'हो' आदि भाषाओं की साहित्य परम्परा को सामने रखना होगा।''3
भारत की आबादी में लगभग दस करोड़ या उससे कुछ अधिक जनसंख्या आदिवासी समाज की है। भारतीय संविधान में इन्हें जनजातीय की संज्ञा दी गई है। वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण के समय में भी आदिवासी समाज अपने बुनियादी हक और अधिकारों से वंचित है। विकास कार्यों के नाम पर इन्हें जंगलों से विस्थापित होना पड़ा है तथा उन्हें क्रूर, आदिम और असभ्य की पहचान देने की कोशिश लगातार हुई है।
वस्तुतः आदिवासी साहित्य, आदिवासी समाज के दुःखों–यातनाओं को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है। यह ऐसा साहित्य है जो अपने समय के समाज को सांस्कृतिक विरासत को सम्पूर्णता में जाकर देखता है।
''आदिवासी जीवन से लेकर आदिवासी साहित्य तक में शास्त्रों और सिद्धान्तों तक के लिए कोई जगह नहीं है, फिर भी आदिवासी साहित्य के बारे में यही समझ विकसित करने और उसका मूल्यांकन करने के लिए हमें उसके बुनियादी तत्वों की पहचान करनी होगी।''4
आदिवासी जीवन में सांस्कृतिक वैश्वीय के दर्शन होते हैं। और सहजता एवं सरलता के अनूठे मेल से वे अपने जीवन को आनंदमय बनाते हैं। आदिवासी साहित्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देता है तथा यह आदिवासी समाजों में जाति तथा वर्ग के भेद को मिलाकर अपने जीवन मूल्यों को स्वीकार करने का पक्षधर है। संथाली, मीणा, गौड़, भील आदि जनजाति अथवा किसी भी अन्य जनजाति पर लिखा साहित्य आदिवासी साहित्य का ही अंग है। वर्तमान में आदिवासी साहित्य एक आन्दोलन के रूप में पनपने लगा है।
''आदिवासी साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। समृद्ध मौखिक साहित्य परम्परा का लाभ आदिवासी साहित्यकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केन्द्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथा लेखन है।''5
वस्तुतः आदिवासी समाज के लोकगीत, लोक कथाएं, लोकभाषा शब्द भण्डार इत्यादि आदिवासी साहित्य के शक्तिस्थल भी हैं और प्रेरणा स्रोत भी। इस बदलते परिवेश में आदिवासियों के संस्कृति में परिवर्तन हुआ है वे बीती हुई दास्तां से ऊपर आकर जीना सीख रही हैं।
निर्मला पुतुल ने लिखा है कि सदियाँ आती गई, फिर भी आदिवासियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है –

''इन सदियों का क्या है
आएंगी................जाएंगी
क्या अब भी विश्वास
करने लायक बचा है यह समय?
जबकि तुम्हारे हिस्से में
भूख और थकान के सिवा
सिवा कि बेहतर जिन्दगी की
उम्मीद के
शायद कुछ भी नहीं है
बिडम्बना ही है
कि ईश्वर पर सबसे ज्यादा
कैसे करती हो विश्वास''6

आज इस विकासवादी युग में आदिवासी यदि भूख और थकान की जिन्दगी जी रहा है तो शायद यह जीवन की सबसे बड़ी बिडम्बना है। शशि भूषण अपनी कविता 'हमें असभ्य रहने दो' में लिखते हैं –
''हमें मत भगाओ यहाँ से

बाबा आदम के जमाने से
जब शायद तुम भी नहीं आए थे यहाँ
तब से मिट्टी और इसी जंगल में
जीती आयी है हमारी कई–कई पुश्तें।
मत विस्थापित करो हमें।''7

आदिवासियों ने शंखनाद के साथ साहित्य की मुख्य धारा से जुड़ने का प्रयास किया, जिसे हम समकालीन साहित्य के रूप में आत्मसात् कर सकते हैं। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास एवं लेखों में आदिवासियों के रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, भेष–भूषा एवं सम्पूर्ण जीवन का सचित्र वर्णन किया जाता रहा है। निर्मला पुतुल की कविता में क्रान्तिकारी चेतना की अभिव्यक्ति क्षोभ, कुण्ठा एवं दुःख को देखा जा सकता है।

''तुम्हारी भाषा में बोलता वह कौन है
जो तुम्हारे भीतर बैठा बुला रहा है
तुम्हारे विश्वास की जड़ें?
दिल्ली की गणतंत्र झाकियों में?
अपनी बोली के साथ बनकर कई–कई बार
पेश किये गये तुम
पर गणतंत्र की नाम की कोई चिड़िया
कभी जाकर बैठी तुम्हारी मुडेर पर''8

सांस्कृतिक स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव

आदिवासी साहित्य के उत्तरोतर विकास की राह में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें रचनाशीलता के पहले चरण में ही लेखकों को जूझना पड़ रहा है। विकास की आधुनिक व्यवस्था और वैश्वीकरण से उत्पन्न नए खतरे अपनी जगह पर तो हैं ही। यह अफसोसजनक है कि भाषा साहित्य वैश्वीकरण के इस दौर में बाजार के पहलु में बैठी राजनीतिक व्यवस्था की दयादृष्टि पर निर्भर हो गई है।

अतः भाषा एक खास समुदाय के जीवनानुभवों और दर्शन की वाहक होती है। आदिवासी समाज पर गैर–आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे गए समकालीन हिन्दी
उपन्यासों की पड़ताल करती हुई रोहिणी अग्रवाल की यह टिप्पणी करने लायक है –

''बेशक सृजन के समय रचनाकार सृष्टा होता है, लेकिन उसके सृष्टा के भीतर बैठा बोध उसके वर्ग, धर्म, लिंग और वय से निर्देशित– प्रभावित होता हुआ उसे जो दृष्टि और संवेदना देता है, वही उसके लेखकीय व्यक्तित्व का सृजन करता है और रचना में प्रतिफलित होता है।''9

बाजारीकरण के समय आदिवासी भाषा, संस्कृति, साहित्य, उनकी वेशभूषा, रहन–सहन आदि को सुरक्षित रखने का संकट विद्यमान है। आदिवासी भाषाओं की अस्मिता और उनसे जुड़ी उनकी सांस्कृतिक अस्मिता के सवाल पर आज के समय में एक सावधान विमर्श की आवश्यकता है, जो उपलब्ध इतिहास है वह निश्चित रूप से औपनिवेशिक इतिहास है।

वैश्वीकरण के भंवर से आदिवासी भाषा व संस्कृति को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन उनका साहित्य है। साहित्य के द्वारा ही वह अपने अस्तित्व व अस्मिता को बचाए रख सकते हैं। आदिवासी इतिहास लेखन में व्याप्त गहने मौन और अंतरालों को इनकी चेतना द्वारा ही संजोया जा सकता है।

अन्ततः एक संथाली लोकगीत –

''डेला–डेला डेला से हो।
दुडुप् मपाम् हुयी कातें,
सिविल स़ग़ाइ रोड़, ते,
आपन–आपिन रोड़, बेग़ोर
सुक–दुक लाड. हाटिअ्
जोड.आ
जुरूक्सेंगेल मारसाल ते।

अर्थात्

तुम आओ मित्र, बैठो।
हमारे रिश्तों की गर्माहट
हमारा सुख–दुःख
यहीं साझा हो
अलाव की रोशनी के इर्द–गिर्द
न मैं कुछ कहूं, न
तुम कुछ बोला।''10

अतः आदिवासी भाषायी, साहित्य, अस्मिताबोध, राष्ट्रयिता और सांस्कृतिकता का सही खाका ये लोकराग ही तय कर सकते हैं। इन्हें सुरक्षित रखना ही आदिवासी विमर्श की सबसे बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- समकालीन हिन्दी उपन्यास और दिकू समाज का आदिवासी चिन्तन– रोहिणी अग्रवाल – पृ0 44
- आदिवासी साहित्य विमर्श–गंगा सहाय मीणा– पृ0सं0–62
- दलित साहित्य एक अंतर यात्रा, बजरंग बिहारी तिवारी, पृष्ठ सं.1
- गुरु रविदास दलित साहित्य के अग्रदूत, चमन लाल, पृष्ठ सं.42
- दलित साहित्य व विमर्श के आलोचक कंवल भारती. पृष्ठ सं.2
- आदिवासी मोर्चा – भगवान ग्वाहड़े–पृ0–24
- बहुवचन 42 (पत्रिका)–पृ0सं0–38
- बहुवचन 42 (पत्रिका)–पृ0सं0–34–40
- जनसप्ता 06 जुलाई, 2014 – रविवारी–पृ0 03
- बहुवचन 42 (पत्रिका) पृ0 41
- नगाड़े की तरह बजते शब्द–निर्मला पुतुल– पृ0 20
- कथाक्रम त्रैमासिक पत्रिका 2011–आदिवासी विशेषांक–पृ0सं0–59
- नगाड़े की तरह बजते शब्द–निर्मला पुतुल'– पृ0–30
- समकालीन हिन्दी उपन्यास और दिकू समाज का आदिवासी चिन्तन– रोहिणी अग्रवाल – पृ0 44
- आदिवासी साहित्य विमर्श–गंगा सहाय मीणा– पृ0सं0–62